क्या गुल खिलाते हैं ये शिक्षा सुधार

उच्च शिक्षा के लिए जरूरी दूरगामी सुधारों पर न कोई गंभीरता दिख रही है, और न राष्ट्रीय सहमति बनाने की कोशिश।

हरिवंश चतुर्वेदी
निदेशक, बिमटेक

जुलाई-अगस्त के महीनों में नए शिक्षा सत्र के शुरू होने के साथ ही देश के विश्वविद्यालयों और कॉलेजों के कैंपसों में रौनक शुरू हो जाती है। शुरू के महीने एडमिशन की मारामारी में निकल जाते हैं और फिर सिलसिला शुरू होता है आंदोलनों का, जिसमें शिक्षक, कर्मचारी और विद्यार्थियों को अपनी-अपनी मांगों के लिए बारी-बारी से धरना-प्रदर्शन, जुलूस, घेराव और हड़ताल करते देखा जा सकता है। इन सबके बीच कक्षाएं, शोध-अनुसंधान, सेमिनार, कॉन्फ्रेंस, सालाना उत्सव आदि जारी रहते हैं।

देश के विश्वविद्यालयों व कॉलेजों में आज करीब 1.6 करोड़ विद्यार्थी पढ़ रहे हैं। यह संख्या वर्ष 2020 तक 4.5 करोड़ होने की संभावना है। देश में उच्च शिक्षा पर करीब 46,200 करोड़ रुपये खर्च होते हैं, जिसके 2020 तक 2,32,500 करोड़ रुपये पहुंचने की संभावना है। इस राशि का दो तिहाई भाग निजी क्षेत्र से और सिर्फ एक तिहाई भाग सरकार से आता है। भारत की उच्च शिक्षा का संचालन केंद्र सरकार, राज्य सरकारें और नौ नियामक संस्थाएं मिल-जुलकर करती हैं, जिन्हें देश के 527 विश्वविद्यालयों और लगभग 26,000 कॉलेजों को नियंत्रित और नियमित करना होता है।

वर्ष 2009 में यूपीए सरकार में मानव संसाधन विकास मंत्री बनने के बाद कपिल सिब्बल ने एक के बाद एक घोषणाएं करके यह उम्मीद जगाई थी कि उच्च शिक्षा में भारी सुधार होने वाले हैं। नियामक संस्थाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार कुछ कम हुआ भी है, पर उच्च शिक्षा में व्यापक सुधारों के लिए ज्यादा कुछ दिखाई नहीं पड़ा। हां, इसे मानव संसाधन विकास मंत्री की सफलता के रूप में ही देखा जाना चाहिए कि वह उच्च शिक्षा को हाशिये से खींचकर सुर्खियों तक लाने में सफल रहे, किंतु हमारे कैंपसों में जमी अकर्मण्यता को दूर करने में वह अभी तक नाकाम रहे हैं।

पिछले दो वर्ष में मानव संसाधन मंत्रालय ने उच्च शिक्षा में बुनियादी परिवर्तन की अनेक घोषणाएं कीं, जिनमें बहुत से नए कानूनों के लिए संसद में अनेक बिलों को पारित कराना भी था। अब तक कपिल सिब्बल नौ नए विधेयक लाने की घोषणा कर चुके हैं। इनमें से ज्यादातर को केंद्रीय मंत्रिमंडल की स्वीकृति भी मिल चुकी है, किंतु इन बिलों को संसद में पारित कराने में कुछ मुश्किलें आ रही हैं। 3 मई, 2010 को संसद में जिन चार विधेयकों को पेश किया गया था, वे हैं विदेशी शैक्षणिक संस्थान बिल-2010, तकनीकी-मेडिकल संस्थानों व विश्वविद्यालयों में अनुचित तरीकों के निषेध से संबंधित बिल, शैक्षणिक ट्रिब्यूनल बिल और नेशनल एक्रिडिटेशन रेगुलेटरी अथॉरिटी बिल।

इनमें से पहले तीन विधेयकों को मानव संसाधन मंत्रालय की स्थायी समिति के विचारार्थ भेजा गया था। समिति अभी इन पर शिक्षाविदों से चर्चा कर रही है। चौथे बिल शैक्षणिक ट्रिब्यूनल बिल को 2010 में लोकसभा ने पारित कर दिया था, किंतु राज्यसभा में कांग्रेस पार्टी के वरिष्ठ सांसद और स्थायी समिति के सदस्य केशव राव के तीखे विरोध के कारण इसे वापस लेना पड़ा था। उनकी आपत्ति थी कि उनके सुझावों को बिल में समाहित नहीं किया गया है।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रस्तावित नौ बिल और दर्जनों घोषणाएं देश के मध्य वर्ग को लुभाने का काम भले ही कर पाएं, किंतु उच्च शिक्षा की बुनियादी समस्याओं का कोई कारगर हल नहीं देने जा रहीं। ये बुनियादी समस्याएं हैं- उच्च शिक्षा के अवसरों का सीमित रहना, वंचितों और गरीबों के लिए उच्च शिक्षा का पहुंच से बाहर होना, गुणवत्ता और सार्थकता की कमी, पर्याप्त संसाधनों की अनुपलब्धता और उच्च शिक्षा के प्रबंध में केंद्रीकरण, गैर-जवाबदेही और गैर-भागीदारी का होना।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रस्तावित बिलों के प्रावधानों का गहराई से अध्ययन करने पर उनमें तदर्थवाद, विरोधाभास, निजी क्षेत्र के प्रति पूर्वाग्रह और सत्ता के केंद्रीकरण की प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं। उच्च शिक्षा को आज जिस स्वायत्तता, जवाबदेही, विकेंद्रीकरण और प्रयोगधर्मिता की जरूरत है, वे सब इन बिलों में एक सिरे से गायब हैं। राष्ट्रीय स्तर की एक दर्जन नियामक संस्थाएं भारी भ्रष्टाचार और दिशाहीनता की शिकार हैं। इन सबका विलय करके एनसीएचईआर बनाने से केंद्रीकरण बढ़ेगा, जो भारत जैसे विशाल देश के लिए कतई उचित नहीं है।

उच्च शिक्षा में बुनियादी बदलाव के लिए राष्ट्रीय स्तर पर जितनी बहस होनी चाहिए थी, वह सिर्फ मीडिया तक सीमित रही है। सभी बिलों को मंत्रालय की वेबसाइट पर डाल देने से ही राष्ट्रीय संवाद स्थापित नहीं हो जाता। मानव संसाधन विकास मंत्री कपिल सिब्बल द्वारा प्रस्तावित बिलों पर राजनैतिक दलों, राज्य सरकारों, शिक्षाविदों, नियोक्ताओं, शिक्षक व छात्र संगठनों के साथ संवाद स्थापित करके जिस राष्ट्रीय सहमति की जरूरत थी, उसका न होना इन सुधारों के टिकाऊ होने पर प्रश्नचिह्न खड़ा करता है। आज के दौर में भ्रष्टाचार को लेकर जो राजनैतिक घमासान चल रहा है, उसमें इन बिलों को संसद के आगामी सत्र में पारित करा पाना टेढ़ी खीर होगा। उच्च शिक्षा में सुधारों को लेकर केंद्र सरकार की सोच बहुत साफ और सुविचारित नहीं है, क्योंकि सब कुछ हड़बड़ी में करने की कोशिश की जा रही है। राज्य सरकारों की इनमें कोई खास दिलचस्पी नहीं है और औद्योगिक जगत के नियोक्ताओं को सिर्फ इतनी चिंता है कि उन्हें कुशल कर्मचारी कैसे मिलें। विश्वविद्यालय, शिक्षक और छात्र संगठनों ने भी उच्च शिक्षा में सुधार के मुद्दों पर कोई बड़ी पहल नहीं की है।

पिछले 64 वर्ष में हुए आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक परिवर्तनों ने समाज के हर वर्ग में उच्च शिक्षा के लिए एक होड़-सी पैदा कर दी। इस चाहत को पूरा करने में हमारी उच्च शिक्षा का ढांचा पूरी तरह से चरमरा गया है। आज हमारे कॉलेज और विश्वविद्यालय 21वीं सदी के लिए जरूरी ज्ञान, बुद्धि, मानवीय गुण और जीविकोपार्जन विषयक योग्यताएं देना तो दूर, सिर्फ कागज पर छपी डिग्रियां बांट रहे हैं। समुचित आर्थिक संसाधन न जुटा पाने के कारण केंद्र व राज्य सरकारें निजी क्षेत्र को लगातार उच्च तकनीकी व पेशेवर शिक्षा में विस्तार की अनुमति देती रहीं। आलम यह है कि आज उच्च शिक्षा के मामले में निजी क्षेत्र, सरकारी क्षेत्र से बहुत आगे निकल गया है। सैद्धांतिक रूप से अधिकांश निजी संस्थान 'नो प्रॉफिट' के सिद्धांत का पालन करते हों, परंतु उनमें एक बड़ा वर्ग विशुद्ध व्यावसायिक उद्देश्य से काम करता है। निजी क्षेत्र में ऐसे बहुत से संस्थान हैं, जो गुणवत्ता और रोजगारपरकता पर खरे उतरते हैं। दूसरी ओर, आईआईटी, आईआईएम और कुछ केंद्रीय विश्वविद्यालयों को छोड़कर ज्यादातर सरकारी कॉलेज और विश्वविद्यालय नौकरशाही और सरकारीकरण के फलस्वरूप औसत दर्जे की उच्च शिक्षा देने में लगे हुए हैं। इसलिए उच्च शिक्षा में दूरगामी सुधारों की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि केंद्र और राज्य सरकारें, राजनैतिक दल, उद्योग जगत, शिक्षक और विद्यार्थी संगठन एक राष्ट्रीय सहमति बनाने की कोशिश करें।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

अवधेश